International Journal of Research inSocial Science
Vol. 12 Issue 02, February 2022,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

तुलसी साहित्य व राजनीतिक चिंतन

सुरज भान
प्रवक्ता हिन्दी
शिक्षा विभाग, हरियाणा सरकार

सारांश

राजतंत्र के मध्य तुलसी ने रामराज्य नामक जिस राजनीतिक एवं सामाजिक वैचारिक का सूत्रपात किया उसकी प्राप्ति आज भी विश्व के सभी लोकतंत्रों का अंतिम लक्ष्य है। रामराज्य सुशासन, सुव्यवस्था, समाज एंव राष्ट्र के सर्वांगीण विकास, स्वतंत्रता, समानता, सामाजिक न्याय, बंधुत्व और प्रजाहित में सतत संलग्न रहने का नाम है। इस व्यवस्था में सभी अपने को स्वस्थ, सुखी, प्रसन्न, विकासशील, समृद्ध और सवतंत्र अनुभूत करते हुए स्वकर्त्तव्यपालन में निमग्न रहते हैं। कोई किसी की उन्नति और प्रसन्नता में बाधक नहीं बनता है। तुलसी का रामराज्य कहने भर को राजतंत्र था। वह अन्य राजतंत्रों के सदृश निरंकुश, स्वेच्छाधारी एंव अमर्यादित न होकर लोकोन्मुख, लोकशील एंव जनवादी था। इस तंत्र में राजा का मनोनयन तक न केवल जन भावनाओं के अनुरूप था, अपितु लोक द्वारा समर्थित भी था। श्रीराम को युवराज बनाने का विचार दशरथ से भी पहले जन सामान्य के मन में स्फुरित होता है,

मूल शब्द**:** तुलसी साहित्य, राजनीतिक चिंतन।

प्रस्तावना

जहाँ तक लोकतंत्र, लोकतांत्रिक व्यवस्था एवं लोकतांत्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रश्न है, इन सभी के स्थापना में जीवन मूल्य एक आवश्यक घटक या आधारस्रोत का कार्य करते हैं। शासन में जन सामान्य की भागीदारी ही लोकतंत्र की रीढ़ होती है। जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों को जन सामान्य के प्रति जवाब देह होना चाहिए। लेकिन पिछले कुछ दशकों से जनता के प्रति शासन के दायित्व में न्यूनाधिक कमी आयी है।

राजतंत्र के मध्य तुलसी ने रामराज्य नामक जिस राजनीतिक एवं सामाजिक वैचारिक का सूत्रपात किया उसकी प्राप्ति आज भी विश्व के सभी लोकतंत्रों का अंतिम लक्ष्य है। रामराज्य सुशासन, सुव्यवस्था, समाज एंव राष्ट्र के सर्वांगीण विकास, स्वतंत्रता, समानता, सामाजिक न्याय, बंधुत्व और प्रजाहित में सतत संलग्न रहने का नाम है। इस व्यवस्था में सभी अपने को स्वस्थ, सुखी, प्रसन्न, विकासशील, समृद्ध और सवतंत्र अनुभूत करते हुए स्वकर्त्तव्यपालन में निमग्न रहते हैं। कोई किसी की उन्नति और प्रसन्नता में बाधक नहीं बनता है। तुलसी का रामराज्य कहने भर को राजतंत्र था। वह अन्य राजतंत्रों के सदृश निरंकुश, स्वेच्छाधारी एंव अमर्यादित न होकर लोकोन्मुख, लोकशील एंव जनवादी था। इस तंत्र में राजा का मनोनयन तक न केवल जन भावनाओं के अनुरूप था, अपितु लोक द्वारा समर्थित भी था। श्रीराम को युवराज बनाने का विचार दशरथ से भी पहले जन सामान्य के मन में स्फुरित होता है, यथा–सबके उर अभिलाषु असकहहिं मनाइ महेसु, आप अछत जुबराज पद, रामहिं देउ नरेसु– (मानस 2–1)

तुलसीदास के श्रीराम जनसामान्य के विकास और कल्याण के लिए सदैव सजग रहते हैं। वे जनता के प्रति पूर्णतः जवाबदेह दृष्टिगत होते हैं। शासक राम पहले प्रजा के लिए हैं, बाद में किसी और के लिए। प्रजा में भी वे गरीबों, दीनों और श्रमिकों के लिए सर्वप्रथम हैं। तुलसी ने अनेक स्थलों पर उन्हें 'दीन हितकारी' एवं 'गरीब निवाज' कहकर सम्बोधित किया है। राजतंत्र में प्रजातंत्र की यह सुख्वाद व्यावहारिक कल्पना रामराज्य एंव तुलसी के चिंतन की अमूल्य निधि है। उनका चिंतन सांस्कुतिक एंव राष्ट्रवादी है। उनका राजनीतिक चिंतन जहाँ अध्यात्म के सार नीती एंव कर्तव्य–पालन से अनुप्राणित है, वहाँ सम्पूर्ण समाज के विकास में सहायक होने के नाते मानवतावादी भी है। तुलसी के चिंतन में एक ऐसे राष्ट की कल्पना है, जो परमात्मा, प्रकृति, शासक और प्रजा के मध्य सेतु का कार्य कर सके। 'सीयाराममय सब जग जानी, करहु प्रनाम जोरि जुग पानी' (मानस–1.7.2), ''सब मम प्रिय सम मम उपजाए''–(मानस–7.85.4), ''परहित सरिस धर्म नाहिं भाई, परपीड़ा सम नहिं अधमाई(मानस–7.40.1)– जैसे अनेक उद्धहारणों में उनका

प्रत्येक जीव को न केवल चेतन समझने, अपितु मानव को अपने समान महत्व का इंसान समझने विषयक चिंतन समाया हुआ है। उनका यह चिंतन संसार के समस्त मूल्यों को जीवनी शक्ति प्रदान कर सकता है। तुलसी के अनुसार शासक को दृढ़ता के साथ सत्यसंध (निःस्पृह एंव सत्य का पालन करने वाला) होना चाहिए। उनके श्रीराम–''सत्यसंघ दृढ़व्रत रघुराई''–(मानस–2.81.1) हैं। सच्चे लोकतंत्र व लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना और उनका सफल क्रियान्वयन सत्यसंघ शासक ही कर सकता है। सत्यसंघ शासक न केवल सर्वतोभावेन निःस्पृह और त्यागी होता है, अपितु उसका सम्पूर्ण जीवन भी प्रजा और राष्ट के लिए ही होता है। ऐसे शासक का स्वयं का कोई सुख या व्यक्तिगत जीवन नहीं होता । इस प्रकार का शासक स्वयं के शरीर, पत्नी, पुत्र, महल (प्रासाद), धन, जमीन और सगे सम्बन्धियों से प्राप्त होने वाले सुख को तृणवत समझते हुए सदैव प्रजाहित में संलग्न रहता है, यथा–

''तनु तिय तनय धामु धनु धरनी, सत्यसंघ कहँ तृन सम बरनी''–
(मानस–2.34.8)

यह उद्धहारण लोकतांत्रिक मूल्यों की आधारशिला है। शासकों को तुलसीदास के उक्त उद्धाहरण से शिक्षा ग्रहण करते हुए सांसारिक प्रलोभनों को प्रजाहित में तृणवत समझते हुए, भ्रष्टाचार से मुक्त शासन व्यवस्था उपलब्ध कराने के प्रयास में सतत् संलग्न रहना चाहिए, तभी हम सच्चे लोकतांत्रिक देश कहलाने के अधिकारी हो सकते हैं। शासक के साथ–साथ प्रजा को भी उक्त लोकतांत्रिक मूल्यों को अपने आचरण में उतारकर भ्रष्टाचार मुक्त शासन व्यवस्था की स्थापना में अपना सहयोग करना चाहिए। यह उद्धरण भ्रष्टाचार को समाप्त करने का एकमात्र उपाय सिद्ध हो सकता है, बशर्ते कि हम सभी इसके एतद्विषयक भाव को सम्पूर्ण ईमानदारी के साथ अपने व्यवहार में उतार लें। यह उद्धहारण संसार में प्रचलित सभी श्रेष्ठ आचरणों, नियमों, नीतियों, जीवन मूल्यों, जीवन–निष्कर्षों, आदर्शों, मर्यादाओं और उत्कृष्ट मानकों का भी मानक है।

लेकतांत्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठा में संलग्न रहने वाले राजा की दृष्टि में प्रजा प्राणों के समान प्रिय होती है। वह सच्चे मन, कर्म और वचन से प्रजा का पालन करता है।

शासन बन जाने के उपरान्त वह अपनी पूर्व स्थिति को विस्मृत न करते हुए, निति के अनुरूप प्रजा–पालन में संलग्न रहता है वनवासी श्रीराम शासक भरत के लिए सुमंत्र के माध्यम से यही संदेश प्रेषित करते हैं–

> ''कहब संदेसु भरत के आएँ, नीति न तजिअ राजपद पाएँ।
> पलेहु प्रजहिं करम मन बानी, सेएहु मातु सकल सम जानी।''
>
> (मानस–2.151.3.4)

उन्हें स्वयं भी प्रजा प्राणों के समान प्रिय थी– अति प्रिय मोहि इहाँ के वासी– (मानस–7.3.7)– जैसे कथन से यह तत्य भलीभाँति प्रमाणित हो जाता है।

तुलसी के भरत राजा (शासक) होते हुए भी राज्य से प्राप्त होने वाली सुख सुविधाओं के प्रति अनासक्त और उदासीन बने रहते हैं। श्री भरत ने गहने–कपड़े और अनेक प्रकार के भोगों से प्राप्त होने वाले सुख को मन, वचन और कर्म से प्रतिज्ञा करके तृणवत समझकर त्याग दिया था। दशरथ जी की सम्पत्ति को देखकर कुबेर लज्जित हो जाते थे और अयोध्या के जिस राज्य के लिए इन्द्र भी लालायित रहते थे, सुख–सुविधाओं से भरपूर उसी राज्य में वे ऋषि–मुनियों से भी अधिक संयम और अनुशासन प्रधान कठिन व्रतों वाला जीवन जीकर हर युग के राजा के लिए सर्वोच्च त्यागमय आदर्श प्रस्तुत करते हैं। शासक भरत की जीवन शैली से शासकों एवं जन–सामान्य को शिक्षा ग्रहण करते हुए अधिकाधिक सुख–सुविधाएँ प्राप्त करने से परहेज करते हुए सीमित आवश्यकताओं वाला जीवन जीना चाहिए। यदि हम ऐसा कर सके तो हमें भ्रष्टाचार, पर्यावरण, असंतुलन और आतंकवाद जैसी अनेक समस्याओं से सहज में ही मुक्ति मिल सकती है। इस परिप्रेक्ष्य में–''तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा, चंचरीक जिमी, चम्पक बागा''– (मानस 2.323.7) नामक उद्धरण विशेष उल्लेखनीय है। सहज उपलब्ध सुख–सुविधाओं के भण्डार के मध्य अपने को अनासक्त और तटस्थ बनाए रखना इस उदाहरण का प्रमुख मंतव्य है। यहाँ 'चम्पक बागा' शब्द सुख–सुविधाओं के आधार का बोधक है। तुलसीदास ने सम्पूर्ण सजगता के साथ इस उदाहरण द्वारा राजतंत्र से सच्चे लोकतंत्र की ओर प्रस्तान करने का सूत्र प्रस्तुत किया है। तुलसी का रामराज्य विश्व में उपलब्ध आज के लोकतंत्रों से इस मायने में बहुत आगे था कि

वर्तमान में अधिकाधिक सुख–सुविधाएँ शासन, प्रशासन और बड़े पूँजीपतियों के इर्दगिर्द ही केन्द्रित होकर रह गयी हैं। अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्रीराम वन में जब न्यून से न्यून स्थिति में रह सकते हैं और अयोध्या नरेश भरत सुख–सुविधाओं के भण्डार के मध्य भी उदासीन, शुष्क और विरस रहने का उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं, तब आज के शासक, वर्ग और पूँजीपतियों का ध्यान इस ओर क्यों नहीं जाता? यह चिन्तन और अन्वेषण का विषय है। तुलसी का यह चिंतन आज के लोकतंत्र और उस समय के रामराज्य की आधारशिला है।

चित्रकूट से अयोध्या लौटते समय श्रीराम ने भरत को राजधर्म के सार से अवगत कराते हुए प्रजाहित में उसे अपनाने पर बल दिया था। श्रीराम के अनुसार शासक (मुखिया) का व्यवहार प्रजा के साथ निम्न उद्धरण के अनुरूप पोषण और संवर्द्धन से युक्त होना चाहिए, यथा–

''मुखिया मुख सों चाहिए खान पान कहुँ एक, पालइ पोषई सकल अंग तुलसी सहित विवेक''–

(मानस2.315)

अर्थात शासक (मुखिया) को मुख के सदृश स्वयं के लाभ के प्रति निरपेक्ष और प्रजा के पालन–पोषण व विकास हेतु संवेदनशील एंव परोपयोगी होना चाहिए। मुख देखने में खाता हुआ प्रतीत अवश्य होता है लेकिन उसका सम्पूर्ण श्रम और उद्यम शारीरिक अंगों के संवर्द्धन के लिए ही होता है। मुख की यह विशेषता होती है कि वह खा सामग्री का कोई भी अंश अपने पास सुरक्षित नहीं रखता। यहाँ तक कि अन्न आदि के जो रेशे दाँतों में फंसे रह जाते हैं, उन्हें भी शलाका या मुख मार्जन (कुल्ला आदि) द्वारा बाहर निकालकर फेंक दिया जाता है। ऐसा न करने की स्थिति में अन्न आदि के रेशों से धीरे–धीरे दाँतों के विकारग्रस्त होकर नष्ट होने का भय बना रहता है। मुख उदर (प्रजा) की क्षुधा शांति और शारीरिक अंगों के विकास एंव पोषण के लिए ही खाद्य साम्रगी ग्रहण करता है। उसका कार्य स्वयं श्रमशील व सचेष्ट रहकर अन्न को शरीर के अन्य अंगों के पोषण एवं संवर्द्धन हेतु उपयोगी बनाना होता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में

वह अपने लिए कुछ भी बचा कर नहीं रखता है। उसकी नियति तो शरीर के विभिन्न अंगों के पोषण और विकास हेतु श्रमरत रहना है। सच्चे अर्थों में वह शरीर का सेवक है। तुलसीदास के इस उद्धरण से आज के शासकों को यह प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए कि समस्त साधनों से प्राप्त आय को विवेकपूर्वक सुनिश्चित योजना द्वारा समाज के सभी वर्गों के पोषण, उन्नति और कल्याण हेतु अथक परिश्रम करते हुए और उपयोगी बनाकर व्यय कर देना चाहिए। इस आय को उसे अपने पास स्वयं के एवं सगे सम्बन्धियों के उपयोग हेतु छिपाकर अथवा भण्डार करके नहीं रखना चाहिए। उसे विवेकपूर्ण सजग व परिरमरत रहकर समान भाव से प्रजा का पालन–पोषण करना चाहिए। उसका स्वयं का या स्वयं के लिए कुछ नहीं होता जो कुछ होता है, वह प्रजा के लिए ही होता है। वह मुख के सदृश निमित्त मात्र अथवा माध्यम भर होता है। समरसता एक प्रमुख लोकतांत्रिक मूल्य है। इस मूल्य ने तुलसी साहित्य में इस रूप में अभिव्यक्ति पायी है कि नगर, ग्राम, पुर तथा अरण्य निवासियों के मध्य व्यापक सामंजस्य एवं सौहार्द्र दिखायी देता है। अयोध्या के शिखर पुरूष एवं वहाँ की जनता जब चित्रकूट के लिए प्रस्थान करती है तो मार्ग में निषाद, कोल–किरात एवं अन्य अरण्य निवासियों के साथ उनका व्यवहार संयत, सद्भाव और समत्व से परिपूर्ण देखने को मिलता है। इन सबका वहाँ के कोल–किरात एवं किरातिनियों के साथ वैचारिक तथा सात्विक खानपान का आदान–प्रदान भी होता है। अयोध्या नगर के सभी विशिष्ट एवं सामान्य जन आपसी समझ का परिचय देते हुए आदिवासी समुदाय के साथ घुलने–मिलने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं। ये लोग वन में किसी भी प्रकार का उपद्रव नहीं करते हैं। दोनों तरफ के लोगों के क्रियाकलाप संयत एवं कृत्रिमता से परे दृष्टिगत होते है। डर एवं वैमनस्यता जैसे भावों का यहाँ अभाव दिखायी देता है। इस अवसर पर आदिवासी एवं गैर आदिवासी समुदाय के मध्य किसी भी प्रकार की विभाजन रेखा उद्भुत नहीं होती। सभी स्वच्छन्द रूप से मनोनुकूल स्थ्यानों पर विचरण करते हैं, यथा–

''बिहरहिं बन चहु ओर, प्रतिदिन लोग सब।''–मानस 2.251

''पुरजन नारि मगन अति प्रीती, बासर जाहिं पलक सम बीती।''

–रा.च.मा.2–251–1

''बचन सुनत पुरजन अनुरागे।''

–रा.च.मा. 2–250–8

''नर नारि निदरहिं नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा।''

– रा.च.मा. 2–250छंद 3

तुलसी के श्रीराम, भरत, वशिष्ठ एवं अयोध्यावासियों द्वारा प्रारंभ की गयी यह समरसता कालांतर में मंद पड़ गयी थी। स्वतंत्रता के पश्चात स्वतंत्रता, समानता एवं सामाजिक न्याय की प्राप्ति हेतु किये गये विभिन्न संवैधानिक उपायों के उपरान्त उक्त भाव जाग्रत होकर गतिमान तो हुआ है, और आंशिक लक्ष्य की प्राप्ति भी हुई है, लेकिन तुलसी के रामराज्य जैसी समरसता अभी पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित नहीं हो सकी है। शासकवर्ग एवं महानगर निवासियों को अयोध्यावासियों के उक्त व्यवहार से शिक्षा ग्रहण करते हुए जंगल निवसित आदिवासियों एवं नगरवासियों के मध्य के व्यवहारगत अंतर को समाप्त करने का प्रयास करना चाहिए। यदि हमने सघन वन में निवसित जनजातियों को अपने समान महत्व को समझते हुए उनके विकास के लिए आवंटित राशि को ईमानदारी से उनके ऊपर व्यय किए जाने की व्यवस्था की होती तो नक्सलवाद आज सम्भवतः इतनी भयावह स्थिति में प्रवेश न करता। श्रीराम ने जनजातियों एवं विषमता के अभाव, दैहिक–दैविक व भौतिक ताप से मुक्ति, भाईचारे की व्यापक स्थापना, सभी के स्वस्थ, सुखी, धनी, सुंदर और पीड़ा रहित होने, पुरूष और स्त्री सभी के चतुर–गुणवान–धर्म परायण–पण्डित–ज्ञानी–दम्भरहित व चारित्रिक उच्चता से समन्वित होने, दुख–दैन्य और अल्प मृत्यु के अभाव, किसी के भी अज्ञानी एवं लक्षणहीन न होने जैसे रामराज्य के मानकों को प्राप्त करने से विश्व के सभी लोकतंत्र अभी कोसों दूर हैं। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं शैक्षिक समानता के स्थापन द्वारा आधे से अधिक लय की प्राप्ति हो सकती है। तुलसी द्वारा वर्णित जनकपुर जैसी समतापरक स्थिति को प्राप्त किये बिना सच्चे लोकतांत्रिक मूल्यों की सीापना नहीं हो सकती। तुलसी की दृष्टि में श्री राम के अतिरिक्त विश्व में उस समय जनक ही एक शासक थे, जिनके आचरण में समतामूलक साम्य, समाजवाद एवं लोकतंत्र के बीज विद्यमान थे। इस परिप्रेक्ष्य में विश्व के सभी

शासकों को तुलसी द्वारा वर्णित अग्रलिखित मूल्य को अपने आचरण में उतारकर जन सामान्य के साथ समतामूलक व्यवहार करना चाहिए। यथा–

''जनक भवन के शोभा जैसी, गृह गृह प्रतिपुर देखिअ तैसी।
जेहि तेरहुति तेहि समय निहारी, तेहि लघु लगहिं भुवन दस चारी।
जो संपदा नीच गृह सोहा, सो बिलोकि सुरनायक मोहा।''

–रा.च.मा. 1.288.6से 8

इस उद्धरण की यह विशेषता है कि जनक के राज्य में संपूर्ण प्रजा के आवास शासक के राज भवन जैसे ही हैं। यहाँ छोटे से छोटे व्यक्ति भी सम्पन्न है। जनकपुर और उनके निवासियों की तुलना में चौदहों भुवन का साम्राज्य तुच्छ प्रतीत होता है। स्वस्थ लोकतंत्र और समाजवाद के सीापन का इससे अच्छा उदाहरण और क्या हो सकता है। अनेक सेवक–सेवकनियों की उपलब्धता के मध्य भी साम्राज्ञी सीता घर के सभी कार्य अपने हाथों से करके साम्यवादी, समाजवादी एवं स्वस्थ लोकतांत्रिक सिद्धान्त से समन्वित मूल्य का बीजवपन करती हैं, यथाय–

जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी, विपुल सदा सेवा बिधि गुनी।
निज कर गृह परिचरजा करई, रामचन्द्र आयसु अनुसरई।

–रा.च.मा. 7.23.5.6

इधर रामराज्य में एक ही घाट पर सभी वर्णों को एक साथ स्नान करते हुए दिखाकर व्यवहार रूप में इन मूल्यों की उपस्थिति को साकार किया गया है– राजघाट सब विधि सुंदर बर, मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर–(मानस– 7.28.3)। राम राज्य में सभी अयोध्यावासी धन–संग्रह की चिंता से मुक्त थे। राज्य की ओर से इस प्रकार की व्यवस्था थी कि सभी को आवश्यकतानुरूप वस्तुएँ निःशुल्क उपलब्ध हों–''बाजार रुचिर न बनई बरनत वस्तु बिनु गथ पाइए''–रा.च.मा. 7.27 छंद 1 रामराज्य की स्थापना में नर और नारियों की समान भागीदारी है।

लोकतंत्र की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि शासक से लेकर प्रजा तक सभी श्रम के महत्व को भली प्रकार समझें। सभी अपनी–अपनी क्षमताओं के अनुरूप श्रम

का उचित मूल्य देना ही चाहिए। तुलसी के श्रीराम केवट को उतराई देने की पेशकश करके इस लोकतांत्रिक मूल्य की स्थापना करते हैं, यथा–

प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा, पिय हिय की सिय जाननि हारी,
मनि मुदरी मन मुदित उतारी, कहेउ कृपाल लेहि उतराई।–
(मानस–2–101.2से 4)

श्रीराम के आचरण में अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के आदर्शों का परालन दृष्टिगत होता है। उनके सम्पूर्ण अभियान में उन सभी सिद्धान्तों का अक्षरशः समावेश दिखायी देता है, जिनका प्रतिपादन शताब्दियों पश्चात नेहरूजी ने अपने पंचशील में किया है। अयोध्या राज्य ने अपने सशक्त सैन्यबल का प्रयोग राज्य विस्तार की भावना अथवा अपना प्रभुत्व स्थापित करने के उद्‌देश्य से कभी नहीं किया। बालीवध के उपरान्त सुग्रीव को वानर राज्य का शासक बनाना और रावण वध के उपरान्त विभीषण को लंका की बागड़ोर सौंपना उनकी उक्त नीति को प्रमाणित करता है। तुलसी के श्रीराम का व्यवहार आधुनिकतावादी सरोकारों एवं उत्तर आधुनिकतावादी आंदोलन के प्रमुख मुद्‌दों (भारत के संदर्भ में स्त्री अधीनता एवं दलित चेतना जैसे लोकतांत्रिक मूल्यों) से समन्वित है। उनका निषाद, केवट, शबरी, कोल–किरात एवं किरातिनियों के साथ किया गया व्यवहार इसका प्रमुख उदाहरण है।

तुलसीदास ने अपने साहित्य में अनेक सिलों पर सामन्ती शासन व्यवस्था का विरोध करते हुए लोकतांत्रिक मूल्यों को स्थापित करने का सुप्रयास किया है। रामविलास शर्मा के अनुसार ''बड़ी कुशलता से उन्होंने समाज में सामंतों के कुशासन का सवाल उठाया है। जनता की दरिद्रता, उसके क्लेशों का वर्णन उन्होंने बड़े ही यथार्थवादी ढ़ग से किया है 2–

''खेती न किसान को, भिखारी को न भीख,
बलि, बनिक को न बनिज न चाकर को चाकरी''
(कवितावली–7–97)

तुलसी ने दुष्ट राजाओं की निंदा ही नहीं की, अपितु राजा और प्रजा के संघर्ष में वे प्रजा के साथ हैं। उनके श्रीराम प्रजा को सर्वोच्च मानते हैं। पिता की वृद्धावस्था को

देखते हुए, तुलसी के श्रीराम प्रजा के पालन हेतु लक्ष्मण से अयोध्या में ही रहने का आग्रह करते हैं। उनका मानना है कि मेरे वियोग में यदि मेरे पिता अपनी प्रिय प्रजा के हितों का आवश्यकतानुरूप ध्यान न रख पाए तो उन्हें मरणोत्तर कष्टों का सामना करना पड़ेगा, यथा–

''जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी।''

(मानस–2.70.6)

तुलसी ने 'जसु राज' और 'सो नृप' जैसे पदों के प्रयोग द्वारा इस कथन के माध्यम से सभी राजाओं को सचेष्ट करने का प्रयास किया है। तुलसी के अनुसार शासक को प्रजा प्रिय होनी ही चाहिए।

तुलसी के अनुसार शासक को प्रजा प्रिय होनी ही चाहिए। वे उन राजाओं (शासकों) के पतन की भविष्यवाणी करते हैं, जो प्रजा को अकारण सताते हैं–

''राज करत बिनु काज ही, करैं कुचालि कुसाजि।
तुलसी ते दशकंध ज्यों, जइहै सहित समाज।।'' दोहावली – 416
''राज करत बिनु काजहीं ठटहिं जे कूर कुठाट।
तुलसी ते कुरुराज ज्यों, जइहैं बारहबाट।।'' – दोहावली–417

तुलसी उत्पीड़न शासन व्यवस्था का सर्वत्र विरोध करते हैं। उन्होंने ''काल कराल नृपाल कृपाल न, राज समाज बड़ो ही छली है ''(कवितावली 7–85) नामक उद्धरण में शासकों की दयाहीनता तथा मंत्री और अधिकारियों (राज समाज) द्वारा जनता को छले जाने की भर्त्सना की है। उन्होंने राजाओं को भूमिचोर कहकर लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना में अपूर्व योगदान दिया है–

''वेद धर्म दूरि गए, भूमिचोर भूप भए।''– (कवितावली–7–117.3)

प्रजा के प्रति राजा की बेरूखी एंव निर्दयता की उन्होंने अनेकशः निंदा की है, यथा–

''दैव न दयाल, महिपाल न कृपाल चित।'' (कवितावली 7–176–5)

राम विलास शर्मा के शब्दों में– ''रोमांटिक कवियों की तरह तुलसीदास कविता को स्वतः स्फूर्त प्रवाह नहीं मानते। उसमें विचार और चिंतन का योग होता है।

तुलसीदास की यह स्थापना साहित्य के प्रति सामन्ती विचारधाराओं से ही लड़ने में मदद नहीं देती, वह पूँजीवादी साहित्य को जन भाषा में सम्पूर्ण प्रजा की भालाई और लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना के उद्देश्य से रचा था, जैसा कि उनके काव्य प्रणयन विशयक उद्देश्य से स्पष्ट है–''कीरति भाणिति भूति भलि सोई, सुरसरि सम सब कहँ हि होई।''–(मानस 1–13.9)

संदर्भ सूची

1. प्लेटो– रिपब्लिक–5, पृष्ठ 173 से 215
2. भारतीय सौन्दर्य बोध और तुलसीदास – तुलसी साहित्य के सामन्त विरोधी मूल्य, पृष्ठ 462
3. वही पृष्ठ 463.